

समयसार ११२ कलश का भावार्थ है न? ११२ कलश है, उसका भावार्थ। नीचे भावार्थ है। ११२ कलश का भावार्थ। श्लोकार्थ हो गया है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! क्या कहते हैं? कि यह आत्मा जो है, वह तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय ईश्वरता-प्रभुता का पिण्ड प्रभु है। ऐसी जो यह ज्ञानज्योति प्रभु, उसे प्रतिबन्ध कर्म है। है भावार्थ में? क्या कहते हैं। कि यह चैतन्यस्वरूप जो चैतन्य, जिसे आत्मा कहते हैं, वह तो शुद्ध आनन्दकन्द और चैतन्यस्वरूप है। उसमें जो यह दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, यह भाव होते हैं, वे सब विकारी हैं। वे आत्मा का स्वरूप नहीं हैं। वे आत्मा को धर्म का कारण नहीं है। आहाहा!

व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दया और दान इत्यादि भाव कर्म है, शुभराग है। आहाहा! वह राग कर्म है। जो कि शुभाशुभ भेदरूप होकर नाचता था.. शुभभाव ठीक है और अशुभभाव अठीक है, ऐसा जो मिथ्यात्व में नाचता था.. आहाहा! अनादि काल से भगवान चैतन्य ज्योति में उसकी जाति से विरुद्ध जो पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव (होते

हैं), वे विरुद्ध हैं। विरुद्ध होने पर भी भेदरूप से नाचता था। अर्थात्? कि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा ठीक है और हिंसा, झूठ अठीक है, यह मिथ्यात्व है। इस भेदरूप से नाचता था, वह अज्ञान है। आहाहा! दोनों बन्ध के कारण हैं; धर्म का कारण एक भी नहीं है। सूक्ष्म बात, भाई! चाहे तो दया, दान का भाव हो या व्रत, तप का भाव - विकल्प हो, या पूजा, भक्ति का हो, वह भाव शुभराग है और राग वह आत्मा की चैतन्य ज्योति से विरुद्ध है।

अनादि से पुण्य परिणाम शुभभाव, वह ठीक है—ऐसा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि मानता था। इसलिए पुण्य और पाप दो रूप से परिणमता और नाचता था। आहाहा! है? और ज्ञान को भुला देता था.. यह शुभभाव या अशुभभाव मुझे मेरे ठीक हैं और मेरा कल्याण करेंगे, ऐसा मानकर आत्मस्वभाव को उन भावों ने भुला दिया था। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत्-चिद् और आनन्द का कन्द प्रभु है। उसमें दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के भाव, वह विकार है; वह धर्म नहीं है तथा धर्म का कारण नहीं है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

अनादि से दया, दान, व्रत, भक्ति, तपादि, अपवास करूँ, दो-पाँच महीने के करूँ, वह तो सब विकल्प और राग है। यह दया, दान के, व्रत के परिणाम, वह भी एक शुभराग है। अज्ञान में वह शुभराग ठीक है और अशुभराग ठीक नहीं है - ऐसा मिथ्यात्वभाव में दो प्रकार से नाचते थे, आहा! वह ज्ञान को भुला देता था.. चैतन्यस्वरूप पुण्य-पाप में रुककर उसे भिन्न भगवान चैतन्यस्वभाव, पुण्य को अपना मानकर आत्मस्वभाव को भुला देता था। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

अनन्त काल हुआ, इसने आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सत्, शाश्वत्, चिदानन्द-ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु है, उसे भूलकर पुण्य-पाप के परिणाम में दो भेद करके, पुण्य ठीक है और पाप अठीक है, पुण्य धर्म है, और पुण्य धर्म का कारण है - ऐसा मानकर आत्मा का आनन्दस्वभाव सच्चिदानन्द प्रभु को वह भुला देता था। आहाहा! है?

उसे अपनी शक्ति से उखाड़कर... आहाहा! प्रभु चैतन्य जागृत हुआ। मैं तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ। मेरे स्वरूप में ये पुण्य और पाप के भाव मुझमें नहीं है, उनमें मैं नहीं हूँ और वे मुझे मेरे धर्म का कारण नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल से

भटकता है। सत्य वस्तु इसे मिलती नहीं, सुनने को मिलती नहीं। जहाँ हो, वहाँ व्रत करो, अपवास करो, तपस्या करो, भक्ति करो, पूजा करो और मन्दिर बनाओ, (यह बात चलती है)। यह तो सब पर की क्रिया का कर्ताभाव तो मिथ्यात्व है परन्तु उसमें होनेवाला शुभभाव, वह भी धर्म नहीं है। उसे धर्म मानकर आत्मा को भुला देता था। आहाहा! वह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव शुभ हैं, उनके प्रेम में प्रभु का प्रेम, आत्मा चिदानन्द का प्रेम भुला देता था। आहाहा! अरे रे! अनन्त काल से भटकता है, उसका मूल क्या है, उसकी इसे खबर नहीं है। यह कहा।

उसे अपनी शक्ति से.. मैं तो ज्ञानस्वभाव हूँ, सच्चिदानन्द प्रभु हूँ। आहाहा! मुझमें इन पुण्य-पाप की गन्ध नहीं है। ये पुण्य-पाप धर्म के कारण तो नहीं परन्तु ये बन्ध के कारण हैं। संसार की वृद्धि का, बन्ध का कारण है। आहाहा! भगवान की भक्ति का भाव भी राग है, क्योंकि वह परद्रव्य है। पर की ओर का झुकाव होता है, वहाँ राग हुए बिना रहता ही नहीं। स्वद्रव्य भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु का जहाँ ज्ञान, राग से भिन्न पड़कर आत्मा का भेदज्ञान होता है, तब उस ज्ञानशक्ति के जोर से राग को उखाड़ डाला। आहाहा! यह राग मैं नहीं हूँ, यह राग बन्ध का कारण है।

मेरा स्वरूप तो सर्वज्ञ वीतरागमूर्ति प्रभु है। आहाहा! सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु है। यह अन्दर भगवान आत्मा है। आहाहा! और वह पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। ऐसा जहाँ अन्तर में भान होता है, तब उसे धर्म की शुरुआत होती है। आहाहा! उस धर्म की शुरुआत में उस ज्ञान की शक्ति से उखाड़ डाला। पुण्य और पाप दोनों बन्धन हैं, मेरा स्वरूप नहीं है; इस प्रकार उन्हें उखाड़ डालता है। आहाहा! जैसे गधा घास खाता है, उसे मूल सहित उखाड़ डालता है; वैसे धर्मी जीव जहाँ अन्दर आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, शुद्ध चिदानन्द आनन्द का नाथ प्रभु है, उसका जहाँ भान होता है, वहाँ वह पुण्य-पाप को मूल में से उखाड़ डालता है कि पुण्य और पाप दोनों अधर्म हैं। आहाहा! ऐसी बातें। क्या हो? बापू! परम सत्य कोई ऐसी चीज़ है। जगत को अनन्त काल से (मिली नहीं)

‘अनन्त काल से भटक रहा बिना भान भगवान;
सेव्या नहीं गुरु सन्त को छोड़ा नहीं अभिमान।’

सच्चे सन्त क्या कहते हैं ? और उन्होंने क्या कहा, इसकी खबर बिना अनन्त काल से चौरासी के अवतार में भटकता है ।

यह यहाँ कहते हैं । **अपनी शक्ति से उखाड़कर..** मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ । ज्ञायकस्वभाव चैतन्य ज्ञायकमूर्ति मैं हूँ । मैं अतीन्द्रिय आनन्द का भरचक भरा हुआ भण्डार हूँ । ऐसा जहाँ भान होता है, वह भान पुण्य के, पाप के भाव को मूल में से उखाड़कर निकाल डालता है । यह नहीं, यह धर्म नहीं और धर्म का कारण भी नहीं । आहाहा ! ऐसा कठिन पड़ता है, प्रभु ! अनन्त-अनन्त काल गया, चौरासी लाख की योनियाँ ! चौरासी लाख योनि में एक-एक योनि में अनन्त बार अवतरित हुआ है । या तो पाप के परिणाम में मिठास का वेदन किया, हिंसा, विषय-वासना, भोग में मिठास मानी, वह भी मिथ्यात्व-भ्रम है और या पुण्य के परिणाम में धर्म माना, वह मिठास भी मिथ्यात्व है । आहाहा !

उसे मूल से **उखाड़कर ज्ञानज्योति..** चैतन्य जलहल ज्योति प्रभु अन्दर आत्मा **सम्पूर्ण सामर्थ्यसहित..** अपने पूर्ण बलसहित । **प्रकाशित हुई।** क्या (प्रकाशित) हुई ? ज्ञानज्योति । आहाहा ! जो पुण्य और पाप के भाव की प्रसिद्धि थी; दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान की भक्ति आदि भाव की प्रसिद्धि थी, वह तो राग की प्रसिद्धि थी; वह कहीं आत्मा नहीं । आहाहा ! उसे प्रसिद्धि को मूल में से उखाड़कर, मैं तो ज्ञान और आनन्द हूँ, उसकी प्रसिद्धि आत्मा ने प्रगट की, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है, धर्म की पहली सीढ़ी, पहली श्रेणी कहने में आता है । इसके बिना सब व्यर्थ है । आहाहा !

नरसिंह मेहता ने कहा न ! 'ज्यां लगी आत्मतत्त्व चीन्यो नहीं त्यां लगी साधना सर्व झूठी ।' वह आत्मा क्या ? चैतन्यमूर्ति आनन्द का नाथ है । आहाहा ! उसे जाने नहीं, उसका अनुभव करे नहीं, उसका आदर करे नहीं, उसका सत्कार करे नहीं, उसके बिना जितने साधन भक्ति, पूजा, दान, दया, वे सब निरर्थक हैं । निरर्थक नहीं परन्तु संसार में भटकने में सार्थक हैं । धर्म के लिए निरर्थक हैं । कठिन बात है, प्रभु ! आहाहा !

ज्ञानज्योति सम्पूर्ण सामर्थ्यसहित प्रकाशित हुई। आहाहा ! मैं तो चैतन्यस्वरूप हूँ । यह राग के दया, दान के, व्रत के, पूजा के भाव से भी पृथक् मेरी चीज तो चैतन्य है । शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु हूँ, ऐसी ज्ञानज्योति अर्थात् आत्मा अपने सामर्थ्य से पुण्य-पाप से

भिन्न पड़कर प्रकाशित हुई। आत्मख्याति हुई, आत्मा प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। आहाहा! जो अनादि से पुण्य और पाप की प्रसिद्धि थी और उन्हें ही सर्व सर्वस्व मानता था.. आहाहा! उसे ज्ञानज्योति के भान से अपना प्रकाश करके प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। मैं तो आत्मा शुद्ध चैतन्य हूँ, मुझमें पुण्य और पाप नहीं है और पुण्य-पाप के भाव मुझे मेरे धर्म का कारण नहीं है। मेरी चैतन्य ज्योति को समझने के लिए भी वे कारण नहीं है। आहाहा!

इस प्रकार ज्ञानज्योति सम्पूर्ण सामर्थ्यसहित प्रकाशित हुई। आत्मधर्म हुआ। जो पुण्य में धर्म मानता था, वह मिथ्यात्व था, अज्ञान था, पाखण्ड था। आहाहा! वह ज्ञानज्योति स्वयं चैतन्यस्वरूप हूँ, जलहल ज्योति चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान के स्वभाव से भरपूर ऐसा मैं हूँ—ऐसी ज्ञानज्योति प्रसिद्ध हुई, तब उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ। आहाहा!

वह ज्ञानज्योति अथवा ज्ञानकला.. क्या कहते हैं? जो आत्मा में पुण्य और पाप के भाव से भिन्न पड़कर, पृथक् होकर, आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ – ऐसा भान हुआ, वह ज्ञान की एक कला प्रगट हुई। जैसे दूज उघड़ती है, दूज; वैसे यह कला प्रगट हुई। अब दूज जैसे (पूर्णता को) प्राप्त होती है, दूज हो और तेरह दिन में पूर्ण पूर्णिमा हुए बिना नहीं रहती। जिसे दूज उगी, (उसे) तेरहवें दिन में पूर्णिमा होगी, होगी और होगी ही। इसी प्रकार जिसे भगवान आत्मा, जो पुण्य और पाप के भाव से पृथक् होकर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की कला जगी, (उसे पूर्णता हुए बिना नहीं रहेगी)। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

भगवान तो आत्मा को प्रभुरूप से बुलाते हैं। भगवान आत्मा! – ऐसा कहकर (बुलाते हैं) ७२ गाथा है। भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का दल, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, अतीन्द्रिय ईश्वरता, स्वच्छता और शान्ति का वह पूर है। अरे रे! यह आत्मा क्या चीज़ है, इसे जाने बिना ये सब दया, दान, व्रत, तप, भक्ति अनन्त बार किये। उसमें से संसार में भटकना मिटा नहीं। आहाहा! यह ज्ञान केवल जहाँ प्रगट हुआ... आहाहा! ज्ञान कला जागृत हुई अभी तो। वह केवलज्ञानरूपी परमकला का अंश है.. क्या कहते हैं? परमात्मदशा जो आत्मा में केवलज्ञान होता है, (वह) तीन काल, तीन लोक को जाननेवाला

सर्वज्ञपना जहाँ आत्मा में प्रगट होता है, वह सर्वज्ञपना (अर्थात्) केवलज्ञान प्रगट होता है। उस केवलज्ञान का यह ज्ञानकला एक अंश है।

पूर्णिमा के दिन जो पूर्ण चन्द्रमा होता है, उसका दूज एक उसका अंश है। पूर्णिमा के दिन पूर्ण चन्द्रमा जो सोलह कला से खिलता है, यह दूज का जो चन्द्र है, यह उसका अंश है। इसी प्रकार जहाँ आत्मा—भगवान आत्मा अपने स्वरूप की जागृति करके.. आहाहा! उस राग के विकल्प की—चाहे तो भगवान की भक्ति का राग हो, वह भी बन्ध का कारण और राग है। आहाहा! उससे भिन्न पड़कर ज्ञान की कला जागृत हुई, वह केवलज्ञानरूपी परमकला का अंश है.. आहाहा! यह पूर्णिमा है, वह चन्द्र की पूर्ण कला है। दूज है, वह पूर्ण कला का अंश है। इसी प्रकार आत्मा में केवलज्ञान परमात्मदशा जो होती है, उसका यह सम्यग्ज्ञान चैतन्यकला जागृत हुई कि मैं तो पुण्य और पाप के परिणाम से भिन्न मेरा स्वरूप है, पुण्य-पाप तो बन्ध के कारण; धर्म के कारण नहीं, ऐसी जो ज्ञान की ज्योति-ज्ञानकला, वह ज्ञान स्फुरित हुआ, वह कला केवलज्ञान जो पूर्ण ज्ञान है, उसका यह अंश है। हाय.. हाय.. ऐसी बातें हैं, लोग कहीं न कहीं उलझकर पड़े हैं। परिभ्रमण करते-करते अनन्त काल हुआ। चौरासी लाख योनि में एक-एक योनि में अनन्त बार अवतरित हुआ, यह एक आत्मज्ञान के बिना। बाकी तो सब पुण्य के, दया के, व्रत के, तप के, भाव तो अनन्त बार किये। बहुत पुण्य करे तो कदाचित् देव हो और उसमें से फिर मरकर कदाचित् यह धूल के सेठिया कहलाते हैं, यह करोड़पति और लाखोंपति, यह धूल का सेठिया हो। उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं है। आहाहा! कहो, चिमनभाई!

मुमुक्षु : गरीबी मिटकर साहूकारी आयी, यह लाभ नहीं हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : साहूकारी आयी, किसकी साहूकारी? किसे कहना? भिखारी है। पैसा दो, पैसे मिले, पैसे मिले, स्त्री मिले, पुत्र मिले... भिखारी है बड़ा भिखारी। अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द अन्दर भरा है, उसकी लक्ष्मी की तो इसे खबर नहीं और भिखारी माँगनेवाला माँगता है, पैसा लाओ, स्त्री लाओ, इज्जत लाओ, कोई बड़ा मानो... उसे तो शास्त्र में भिखारी कहते हैं। चिमनभाई! तुम्हारे सेठ (के पास) पचास करोड़ रुपये! भिखारी है। मुम्बई! व्याख्यान में आया था। पचास करोड़ रुपये। भिखारी है, कहा

सब भिखारी, माँगनेवाले हैं। पैसा लाओ! भिखारी.. भिखारी.. जैसे भिखारी रोटी माँगता है, वैसे यह पैसा माँगे, स्त्री माँगे, पुत्र माँगे, इज्जत माँगे। माँगनेवाला है, माँगनेवाला-भिखारी।

मुमुक्षु : पैसा है, इसलिए तो कोई सेठ कहता है, पैसे के बिना कोई सेठ भी नहीं कहता।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल का सेठ कहे, उसमें क्या भला हुआ? यह तो हमारे कुँवरजीभाई को कहा था या नहीं? बुआ के पुत्र, (हमारे) भागीदार। उनसे पूछा था, तुम्हें कितनी बार सेठ कहे? हजार बार कहें? तो कहे नहीं; पाँच सो बार कहें, बुद्धि कुछ नहीं होती पुण्य के कारण कमा खाते थे। बुद्धि का ठिकाना कुछ नहीं होता। आहाहा! बारह महीने में दो-दो लाख की आमदनी! अक्ल ऐसी, अक्ल में माल नहीं होता। हम तो साथ में रहे थे, दुकान (में) भागीदार (थे)। कुछ खबर नहीं होती। आहाहा! परन्तु पूर्व के किसी पुण्य के कारण पाँच-पच्चीस-पचास लाख इकट्ठे हों, वहाँ ऐसा हो जाए कि ओहोहो!

मुमुक्षु : बहुतों की पैढ़ी उठ गयी और कुँवरजीभाई की पैढ़ी रही।

पूज्य गुरुदेवश्री : रही, उसमें क्या भला हुआ? मरकर गया गया पशु में। उसमें क्या भला हुआ। आहाहा! पशु हुआ, पशु। यहाँ दो लाख की आमदनी। मैंने तो उनसे (संवत्) १९६६ के वर्ष में कहा था, १९६६, बीस वर्ष की उम्र थी। अभी तो ९० (हुए), ७० वर्ष पहले की बात है। मेरी दुकान भी थी और उनकी दुकान भी थी, दोनों दुकानें अलग थीं। उनका बड़ा भाई और मैं भागीदार। मैंने तो एक बार स्पष्ट कहा था, कुँवरजी! तेरी ऐसी ममता इतनी दिखती है... मैं तो भगत कहलाता था न! भले दुकान चलाता था। मेरे सामने बोलते नहीं थे। (मैंने कहा) मरकर पशु होओगे, याद रखना, कहा। तेरे लक्षण देव होने के नहीं हैं, मनुष्य होने के मुझे नहीं लगते... हमारी बुआ का लड़का, भागीदार था। सत्तर वर्ष पहले की बात है, अभी नब्बे हुए। बोले नहीं, मेरे सामने बोले नहीं। भगत है यह, भगत है, बोलना नहीं। क्या लगायी है पूरे दिन यह? पूरे दिन यह कमाना, यह स्त्री, और यह पुत्र और यह लाओ... मुम्बई से माल लावे तो मानो... आहाहा! परन्तु क्या है इसमें? धुएँ को बाँथ में भरकर मानो अमृत पीते हैं, ऐसा तू मानता है। आहाहा! यह तो ७० वर्ष पहले की बात है। बीस वर्ष की उम्र थी। देह का जन्म (संवत्) १९४६ में जन्म है।

१९६६ की बात है। बीस वर्ष (के थे)। ये दुनिया पागल है, पागल है। अपने को कुछ पैसा-बैसा मिला और इज्जत हुई तो मानो हम पैसेवाले हो गये। पैसावाला! एक वाला (एक प्रकार का रोग) यहाँ निकले तो चिल्लाहट मचाता है। यहाँ पैसेवाला, स्त्रीवाला, पुत्रवाला, इज्जतवाला, कीर्तिवाला,... यह तुझे कितने 'वाला' लगे हैं। 'दबे'! यहाँ बात ऐसी है अब! आहाहा!

प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं, नाथ! तू अन्दर कौन है? आहाहा! इसने सच्चिदानन्द प्रभु को जहाँ जगाया और जब पुण्य और पाप के भाव का तिरस्कार करके उखाड़ दिया (कि) तुम धर्म नहीं हो। आहाहा! वह ज्ञानकला-सम्यक् कला जागृत हुई, दूज उगी। वह **केवलज्ञानरूपी परमकला का अंश है..** यह दूज उगी, वह पूर्णिमा का अंश है। इसी प्रकार जो पहले सम्यग्ज्ञान जागृत हुआ, शुरुआत (हुई), भले अभी पुण्य और पापभाव हों परन्तु उनसे मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा अनुभव हुआ—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, अनुभव हुआ। वह कला केवलज्ञान की परमकला का अंश है। आहाहा!

इसमें भी (लोगों को) विवाद है। ऐसा कि केवलज्ञान सर्वघाति (कर्म का) नाश हो, तब होता है और तुम मति-श्रुतज्ञान को उसका अंश कहते हो। अभी दिगम्बर में (यह) विवाद है।

मुमुक्षु : श्रीमद् के समय में भी यह विवाद था।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी यहाँ का विरोध करते हैं न! यहाँ जब ऐसा कहा जाता है कि मति और श्रुतज्ञान, वह केवलज्ञान का अंश है; तब वे कहते हैं कि केवलज्ञान तो सर्वघाति का नाश हो, तब होता है, उसका अंश कहाँ से आया यह? यहाँ यह क्या कहते हैं? चेतनजी! यह क्या कहते हैं यह? यह सोनगढ़ का है? आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्य के बल से जहाँ जागृत हुआ... आहाहा! भले वह अभी अंशरूप से प्रगट हुआ, धर्म का अंश आया और पूर्ण केवलज्ञान होने में उसे देरी हो तो भी उस केवलज्ञान कला का यह ज्ञानकला एक अंश है। आहाहा! उसकी जाति है। उसकी जाति बढ़-बढ़कर केवलज्ञान होनेवाला है। उस आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्ज्ञान कला जागृत हुई, वह पूर्ण आश्रय लेकर उसे केवलज्ञान होनेवाला है। आहाहा! उसे ये पुण्य के

परिणाम बाधक नहीं होंगे, विघ्न नहीं करेंगे, उन्हें उखाड़ डालेगा। आहाहा! मेरी जाति में पुण्य-परिणाम तीन काल में है नहीं। इस मेरी जाति में तो अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति, वीतरागता और स्वच्छता का भण्डार है। ऐसा जहाँ सम्यक् में भान हुआ, वह ज्ञान का अंश धर्म की शुरुआत का अंश, वह पूर्ण केवलज्ञान की कला का अंश है। आहाहा!

यह तो मति और श्रुत का अंश है, वह केवलज्ञान का अंश है। (इसका) विरोध किया था। जयधवल में है। जयधवल शास्त्र है न, उसमें (आता है)। केवलज्ञान है, सर्वज्ञ है, उसका यह मतिश्रुतज्ञान अंश है, अवयव है। पूर्ण केवलज्ञानी वह अवयवी है, पूर्ण चीज है। सर्वज्ञपना तो प्रभु का स्वभाव है। इस आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है। उस स्वभाव का अभी भान हुआ कि मैं तो सर्वज्ञस्वरूपी हूँ। अभी सर्वज्ञपना प्रगट नहीं हुआ, परन्तु सर्वज्ञ हूँ—ऐसा प्रतीति और अनुभव में आया, तब उसकी कला का एक अंश जागृत हुआ, धर्म की शुरुआत हुई, तब उसे धर्म की शुरुआत हुई। वह पूर्ण केवलज्ञान प्रगट होने का अवयव है। केवलज्ञान वह अवयवी है। जैसे, पूरा शरीर अवयवी है, (उसमें) यह हाथ, पैर, वे अवयव हैं। पूरा शरीर अवयवी है, हाथ-पैर उसके अवयव हैं। इसी प्रकार पूर्ण सर्वज्ञपना अवयवी है, उसका यह ज्ञान कला—मति-श्रुत जो सम्यग्ज्ञान हुआ, वह उसका एक अवयव है। भाई! वहाँ अवयव लिया है। आहाहा! अरे रे! अन्तर की बात की कुछ खबर नहीं होती। बाहर में गोते मारकर मर गया अनन्त काल से। साधुपने का नाम धराकर भी विपरीतता की। आहाहा! धर्म के नाम से, पुण्य के नाम से धर्म स्थापित करके साधुपना भी मिथ्यादृष्टिरूप से किया... आहाहा!

अब कहते हैं, ज्ञानकला केवलज्ञानरूपी परमकला का.. परमकला (कहा) देखा? उसका वह अंश है तथा वह केवलज्ञान के सम्पूर्ण स्वरूप को जानती है.. आहाहा! दूज उगे, उस दूज को जाने, पूरे चन्द्र को जानता है। कालिमा को भी जानता है और पूर्ण चन्द्र दिखता है। दूज में पूरा चन्द्र ऐसे दिखता है। दूज, दूज को जाने, दूज पूरे चन्द्र को भी जाने और बीच में अन्धेरा कितना है, उसे भी वह जाने। आहाहा! इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान की दशा, प्रथम आत्मज्ञान होने पर उसकी दशा में वह आत्मा को जाने और पूर्ण सर्वज्ञ कैसे होते हैं, उन्हें भी वह जानता है। आहाहा! अरे! ऐसी धर्म की बातें। लोगों को निवृत्ति नहीं

मिलती और निवृत्ति हो, वह धर्म के नाम से उल्टे रास्ते चढ़ गया होता है। आहाहा! अरे रे! मनुष्य का अवतार पशु जैसा अवतार होकर चला जाएगा।

जिसे यह भगवान आत्मा... आहाहा! सद्चिदानन्द प्रभु, सत् शाश्वत्। शाश्वत् ज्ञान और शाश्वत् आनन्द का भण्डार है। ऐसी दशा प्रथम में प्रथम ज्ञानधारा, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान की कला जगी, वह केवलज्ञान को भी जानती है। वह अवयव है और पूर्ण सर्वज्ञ कैसे होते हैं, उन्हें भी जानती है। समझ में आया? है?

स्वरूप को जानती है.. पूर्ण स्वरूप को वह जानती है। केवलज्ञान के सम्पूर्ण स्वरूप को जानती है और उस ओर प्रगति करती है,.. देखो? आहाहा! यह ज्ञानानन्द प्रभु हूँ, ऐसा जहाँ अनुभव हुआ, वह अब ज्ञान की ओर एकाग्रता, स्वरूप की ओर एकाग्रता का ही झुकाव है। अब राग की एकाग्रता का झुकाव छूट गया है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें हैं। **और उस ओर प्रगति करती है,.. देखा?** सम्पूर्ण (स्वरूप को) जानती है, सम्यग्ज्ञान होने पर मति-श्रुत की ज्ञानकला जहाँ अन्दर में से जागृत हुई, पुण्य-पाप धर्म नहीं-ऐसा जहाँ ज्ञान हुआ, वह ज्ञान की कला केवलज्ञान का अंश है, परन्तु वह अंश केवलज्ञान को भी जानता है। परमकला का अंश है, परन्तु परमकला कैसी होती है, उसे भी वह जानता है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश। पहला तो ऐसा करो, ऐसा करो, दया पालो, व्रत करो, तप करो, भगवान की भक्ति करो, (यह सरल था)। इस भक्ति-फक्ति में सब राग है। आहाहा!

परद्रव्य की ओर के झुकाव में जितना भाव (होता है), वह सब राग है। स्वसन्मुख के झुकाव में जहाँ आत्मभगवान है, उसके झुकाव में भाव होता है, वह भाव निर्मल और धर्म है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल से किया नहीं। उसमें अभी तो गड़बड़, घोटाला बहुत चला है। अपने को जैसा लगे, वैसा स्वच्छन्दता से प्ररूपण करते हैं, मनवाते हैं। अरे रे! भव चला जाएगा, बापू! कुदरत के नियम में जो सत्य होगा, वह रहेगा। असत्य वहाँ नहीं रहेगा। आहाहा!

आहाहा! उस केवलज्ञान के स्वरूप को वह जानती है। **और उस ओर प्रगति करती है,.. अर्थात् पूर्ण केवलज्ञान प्रगट करने के लिए स्वभाव की सन्मुखता का प्रयत्न किया करती है।** आहाहा! समझ में आया? **इसलिए यह कहा है कि 'ज्ञानज्योति ने**

केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा प्रारम्भ की है।' केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा प्रारम्भ की है। आहाहा! वह राग के साथ क्रीड़ा थी। दया, दान, व्रत, तप और भक्ति, वह सब राग था। आहाहा! 'निज पद रमै सो राम कहिये, राग में रमै वह हराम कहिये।' आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। इसलिए यह कहा है कि 'ज्ञानज्योति ने केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा प्रारम्भ की है।' उसने क्रीड़ा प्रारम्भ की है। आहाहा! अल्प काल में केवलज्ञान लेगी, भवमुक्त होगी। आहाहा! ज्ञानकला सहजरूप से विकास को प्राप्त होती जाती है.. यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव से मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा जहाँ अनुभव और दृष्टि हुई, तब उसका ज्ञान सहजरूप से विकास को प्राप्त होता जाता है। वह ज्ञान अर्थात् आनन्द और शान्ति सहजरूप से विकसित होती जाती है। दूज, तीज, चौथ, पंचमी, छठ, सप्तमी, अष्टमी करके पूर्णिमा (होगी), ऐसा। इसी प्रकार आत्मा में धर्म की पहली कला, सम्यग्ज्ञान जहाँ उदित हुई... यह बापू! यह तो कोई अलौकिक बातें हैं, भाई! यह ज्ञानकला बढ़ते-बढ़ते... आहाहा! केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा प्रारम्भ की है।

ज्ञानकला सहजरूप से विकास को प्राप्त होती जाती है... सहजरूप से विकास को प्राप्त होती जाती है। वहाँ हठ नहीं करनी पड़ती। आहाहा! और अन्त में वह परम कला अर्थात् केवलज्ञान हो जाती है। लो! पूर्ण दशा—परमात्मदशा हो जाती है। देह छूटकर सिद्ध हो जाता है। आहाहा!

टीका : पुण्य-पापरूप से दो पात्रों के रूप में नाचनेवाला कर्म.. पुण्य और पाप दो हैं, ऐसा माननेवाला एक पात्ररूप होकर (रंगभूमि में से) बाहर निकल गया। पुण्य हो या पाप हो, शुभ हो या अशुभ हो, दोनों अधर्म हैं; दोनों धर्म नहीं। आहाहा! आत्मा का ज्ञान और भान हुआ, इसलिए वे दोनों पुण्य-पाप के भाव कर्मरूप से निकल गये (अर्थात्) दोनों कर्म छूट गये। आहाहा! है?

पुण्य-पापरूप से दो पात्रों.. अर्थात् दो प्रकार होकर, कर्म एक पात्ररूप होकर.. निकल गया। यह दोनों कर्म ही हैं, पुण्य और पाप दोनों कर्म हैं। दोनों में धर्म और आत्मा नहीं है। आहाहा!

भावार्थ : कर्म सामान्यतया एक ही है.. पुण्य हो या पाप हो, शुभ हो या अशुभ

हो, तथापि उसने पुण्य-पापरूपी दो पात्रों का स्वांग धारण करके.. स्वांग धारण करके (अर्थात्) एक का एक आदमी स्वांग धारण (करे जैसे)। रंगभूमि में प्रवेश किया था। आहाहा! पुण्य का जहाँ ऐसा ठाठ आवे... करोड़ों रुपये, अरबोंपति, रूपवान स्त्री, अपना शरीर रूपवान, पैसा, बड़े करोड़ों के मकान... आहाहा! उस पुण्य के ठाठ को देखकर मनुष्य उसमें मरता हो। वह तो कर्म का फल है, प्रभु! वहाँ तू उसमें नहीं है और पाप के फल में नरकादि गति मिले, परन्तु वह तो परवस्तु है, वह कहीं तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! मानों हैरान.. हैरान (हो गया)। अर रर! हम निर्धन, हम गरीब, हमें खाने को नहीं मिलता। बापू! यह तो पाप की बात है। पाप की प्रतिकूलता हो, वह कहीं आत्मा को बाधक नहीं है। आहाहा!

कर्म सामान्यतया एक ही है, तथापि उसने पुण्य-पापरूपी दो पात्रों का स्वांग धारण करके रंगभूमि में प्रवेश किया था। यहाँ नाटक का बताया है न! रंगभूमि में दोनों आये थे। उसे ज्ञान ने यथार्थतया एक जान लिया.. चैतन्यस्वरूप ने जान लिया कि यह पुण्य और पाप दोनों कर्म है, दोनों संसार है, दोनों बन्ध का कारण है। आहाहा! है? उसे ज्ञान ने यथार्थतया एक जान लिया, तब वह एक पात्ररूप होकर रंगभूमि से बाहर निकल गया,.. बाहर निकल गया। और नृत्य करना बन्द कर दिया। पुण्य-पाप रुक गये। अकेला आत्मा रह गया। आहाहा!

इसका यह हिन्दी है।

आश्रय, कारण, रूप, सवादसुं भेद विचारि गिनें दोऊ न्यारे,
पुण्य रु पाप शुभाशुभभावनि बन्ध भये सुखदुःखकरा रे।
ज्ञान भये दोउ एक लखै बुध आश्रय आदि समान विचारे,
बन्ध के कारण हैं दोऊ रूप इन्हें तजि जिनमुनि मोक्ष पधारे।

पूरे अधिकार का सार रखा है। आहाहा! अज्ञानी, पुण्य है वह अलग चीज़ है और पाप अलग है, ऐसा मानता है। कारण भिन्न है। पुण्य बन्धन का कारण शुभभाव है और पाप बन्धन का कारण अशुभ है, ऐसे अज्ञानी दो भेद मानता है। उसका रूप (अर्थात्) बन्धन में अन्तर मानता है और उनके स्वाद अर्थात् फल। पुण्य के फल में यह पैसा-धूल, स्त्री,

पुत्र मिले; पाप के फल में दुर्गति मिले, ऐसा भेद विचारि गिनें दोऊ न्यारे,.. अज्ञानी दोनों का भेद विचारकर दोनों अलग जाति है, ऐसा मानता है।

पुण्य रु पाप शुभाशुभभावनि बन्ध भये सुखदुःखकरा रे। पुण्य और पाप दोनों शुभाशुभभाव बन्ध भये.. दोनों सुख-दुःख अर्थात् लौकिक सुख, हों! लौकिक सुख-दुःख को करता है। उसमें कुछ आत्मा है नहीं। अरबोंपति हो तो भी बेचारा भिखारी दुःखी है। आहाहा! अपने यहाँ आते नहीं? शान्तिप्रसाद, दिल्ली, चालीस करोड़! यहाँ तो सब बहुत आते हैं। चालीस करोड़! ऐई! तुम्हारे (सेठ के) पास पचास करोड़ है। परन्तु वह दूसरा अपने था न? वह पाणसणा का! है न गोवा में! दो अरब चालीस करोड़! दो अरब चालीस करोड़! शान्तिलाल खुशाल, अभी मर गया पौने दो वर्ष पहले। अभी (उसका) लड़का वहाँ मुम्बई में दर्शन करने आया था। 'मेरे पिता को आना था' ऐसा बोला, परन्तु गुजर गये। मेरे पिता को आप के दर्शन करने आना था। कुछ धूल... दो अरब चालीस करोड़! दो सौ चालीस करोड़। मर गया बेचारा उसी-उसी में। आहाहा! मेरे पैसे, मेरे पैसे, मेरे पैसे और मैं बहुत बड़ा धन्धा करता हूँ और बहुतों को निभाता हूँ, बहुतों को निभाता हूँ, ऐसा अभिमान! आहाहा! सब मर जानेवाले हैं। आहाहा! कुदरत के नियम में ये सब पामर हो जानेवाले हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अज्ञानी आश्रय में, कारण में, उनके बन्धन में और उनके स्वाद में भेद-विचारकर अलग-अलग न्यारा विचारता था। **पुण्य रु पाप शुभाशुभभावनि बन्ध भये सुखदुःखकरा रे।** बन्ध से सब एक ही जाति है। ज्ञान भये दोउ एक लखै.. है? सम्यग्ज्ञान चैतन्यमूर्ति प्रभु मैं तो हूँ, ऐसा जहाँ ज्ञान हुआ, वहाँ दोनों एक ही जाति है—पुण्य और पाप में कुछ अन्तर नहीं है। आहाहा!

ज्ञान भये दोउ एक लखै.. लखै अर्थात् जाने। सम्यग्ज्ञान होने पर, धर्म की पहली दशा होने पर, पुण्य और पाप दोनों एक ही जाति है, बन्ध का कारण है, ऐसा ज्ञानी जानता है। आहाहा! लखै अर्थात् जाने। **ज्ञान भये दोउ एक लखै बुध आश्रय आदि समान विचारे,** दोनों का आश्रय बन्ध का कारण है। शुभ और अशुभ बन्ध का कारण और बन्धरूप है। आहाहा!

बन्ध के कारण हैं दोऊ रूप.. शुभ और अशुभभाव बन्ध के कारण हैं दोऊ रूप इन्हें तजि जिनमुनि मोक्ष पधारे। इन पुण्य और पाप को छोड़कर स्वरूप की स्थिरता, दृष्टि, अनुभव करके जिनमुनि परमात्मपद को प्राप्त हुए। इन पुण्य-पाप के कारण से नहीं; पुण्य-पाप को छोड़कर (परमात्म पद को) प्राप्त हुए। आहाहा! ऐसा है।

समाज में तो मुकिल पड़े, ऐसा है। यह तो जंगल है। यहाँ कहाँ, यहाँ कोई समाज नहीं है। यहाँ तो आत्मा की बात है। सम्प्रदाय में तो विवाद उठाते हैं, तकरार उठाते हैं। ऐ... ऐसा नहीं, ऐ... ऐसा नहीं। ऐसा नहीं तो रख तेरे घर में। मार्ग तो यह है। आहाहा!

इस प्रकार श्री समयसार की (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री समयसार परमागम की) श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेवविरचित आत्मख्याति.. इस टीका का नाम आत्मख्याति है। यह टीका है न? आत्मप्रसिद्धि। आत्मख्याति अर्थात् प्रसिद्धि। आत्मख्याति नामक टीका में पुण्य-पाप का प्ररूपक तीसरा अंक समाप्त हुआ। लो, जीव-अजीव के पश्चात् कर्ता-कर्म और यह पुण्य-पाप।

आस्रव अधिकार

अथ प्रविशत्यास्रवः ।

(द्रुतविलम्बित)

अथ महामद-निर्भरमन्थरं समररङ्गपरागत-मास्रवम् ।

अयमुदारगभीर-महोदयो जयति दुर्जयबोधधनुर्धरः ॥११३॥

द्रव्यास्रवतैँ भिन्न है, भावास्रव करि नास।

भये सिद्ध परमात्मा, नमूँ तिनहिँ, सुख आस॥

प्रथम टीकाकार कहते हैं कि - 'अब आस्रव प्रवेश करता है।' जैसे नृत्यमंच पर नृत्यकार स्वाँग धारण कर प्रवेश करता है, उसी प्रकार यहाँ आस्रव का स्वाँग है। उस स्वाँग को यथार्थतया जाननेवाला सम्यक्ज्ञान है, उसकी महिमारूप मङ्गल करते हैं:-

श्लोकार्थ : [अथ] अब [समररंगपरागतम्] समररंगण में आये हुए, [महामदनिर्भर-मन्थरं] महामद से भरे हुए मदोन्मत्त [आस्रवम्] आस्रव को [अयम् दुर्जयबोधधनुर्धरः] यह दुर्जय ज्ञान-धनुर्धर [जयति] जीत लेता है, [उदारगभीरमहोदयः] जिसका (-ज्ञानरूपी बाणावली का) महान् उदय उदार है (अर्थात् आस्रव को जीतने के लिये जितना पुरुषार्थ चाहिए, उतना वह पूरा करता है) और गम्भीर है, (अर्थात् छद्मस्थ जीव जिसका पार नहीं पा सकते)।

भावार्थ : यहाँ आस्रव ने नृत्यमंच पर प्रवेश किया है। नृत्य में अनेक रसों का वर्णन होता है, इसलिए यहाँ रसवत् अलंकार के द्वारा शान्तरस में वीररस को प्रधान करके वर्णन किया है कि 'ज्ञानरूपी धनुर्धर आस्रव को जीतता है।' समस्त विश्व को जीतकर मदोन्मत्त हुआ आस्रव संग्रामभूमि में आकर खड़ा हो गया; किन्तु ज्ञान तो उससे भी अधिक बलवान् योद्धा है, इसलिए वह आस्रव को जीत लेता है अर्थात् अन्तर्मुहूर्त में कर्मों का नाश करके केवलज्ञान उत्पन्न करता है। ज्ञान का ऐसा सामर्थ्य है ॥११३॥

 श्लोक - ११३ पर प्रवचन

अब चौथा आस्रव अधिकार ।

द्रव्यास्रवतैं भिन्न ह्वै,.. क्या कहते हैं ? कि कर्म है न, यह जड़, यह परमाणु द्रव्यास्रव कहलाते हैं । उसके परमाणु जो पुण्य के आते हैं, पाप के आते हैं, वे द्रव्यास्रव कहलाते हैं । जैसे जहाज में छिद्र हो और पानी आवे; वैसे आत्मा में पुण्य-पाप के भाव, वे भावास्रव हैं और उनसे परमाणु आवें, वे द्रव्यास्रव है । अरे ! क्या कहा यह ?

द्रव्यास्रव से भिन्न है, प्रभु ! भावास्रव करि नास । और पुण्य का, पाप का भाव, दोनों आस्रव हैं, नये आवरण का कारण है । उसका मुनियों ने, धर्मात्माओं ने भावास्रव का नाश किया । भये सिद्ध परमात्मा,.. आहाहा ! णमो सिद्धाणं-सिद्ध हुए वे । नमूँ तिनहिं, सुख आस । अर्थकार कहते हैं, मेरे सुख की आशा से मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ । मेरा सच्चिदानन्द प्रभु जागे और आनन्द में आवे, इसलिए मैं नमस्कार निमित्त से करता हूँ । आहाहा !

प्रथम टीकाकार कहते हैं कि-‘अब आस्रव प्रवेश करता है।’

जैसे नृत्यमंच पर.. इस नाटक में । नृत्यकार स्वाँग धारण कर प्रवेश करता है,.. कोई राजा का, भर्तहरि का, पींगला का स्वाँग धारण कर (प्रवेश करते हैं) । उसी प्रकार यहाँ आस्रव का स्वाँग है । पुण्य और पाप दोनों भाव, वे भावास्रव हैं । आस्रव अर्थात् नये आवरण का कारण है । जैसे जहाज में छिद्र पड़े और पानी आवे, इसी प्रकार भगवान आत्मा में पुण्य और पाप दोनों भाव, आस्रव हैं, अर्थात् आते हैं, जिनसे नये आवरण आते हैं । वे कोई धर्म नहीं है । आहाहा !

यहाँ आस्रव का स्वाँग है । उस स्वाँग को यथार्थतया जाननेवाला सम्यक्ज्ञान है,.. आहाहा ! बहुरूपिया वेश धारण करके आता है । राजा का (वेश) लेकर आवे, गरीब मनुष्य होकर आवे (तो) चतुर व्यक्ति जान लेता है कि यह तो बहुरूपिया है । सर्राफ की बड़ी दुकान होवे न ! गद्दी, तकिये में बैठा हो । वहाँ कुछ रसोई नहीं होती, कुछ नहीं होता (और बोलता हो) ऐ.. माँ-बाप ! मुझे रोटी दो, ऐसे भांड होकर आवे, परन्तु समझे कि यह

खबर नहीं ? यहाँ घर भी नहीं और रोटियाँ भी नहीं । परंतु भांड है । फिर से और राजा होकर आवे तो समझ जाए कि यह तो भांड है । इसी प्रकार पुण्य और पाप दोनों भाव भांड की तरह बहुरूपक है । वह आत्मा का स्वरूप और आत्मा का कारण नहीं है । आहाहा !

उस स्वाँग को यथार्थतया जाननेवाला सम्यक्ज्ञान है, उसकी महिमारूप मङ्गल करते हैं:- लो ! मांगलिक करते हैं, मांगलिक ! पहला संस्कृत श्लोक है । ११३ मांगलिक ।

अथ महामद-निर्भरमन्थरं समररङ्गपरागत-मास्रवम् ।

अयमुदारगभीर-महोदयो जयति दुर्जयबोधधनुर्धरः ॥११३॥

आहाहा ! इसका श्लोकार्थ । अब 'समररंगपरागतम्' समरांगण में.. जैसे युद्ध का स्थल हो और जैसे आवे; वैसे समरांगण में महामद से भरे हुए मदोन्मत्त.. महामद से भरे हुए पुण्य-पाप । क्योंकि मैंने कुछ बादशाह को गिराया, साधु हुए उन्हें भी मैंने गिराया है । साधु होकर भी उस पुण्य की क्रिया में धर्म माननेवालों को सबको मैंने गिराया है । इसलिए आस्रव को अभिमान हो गया है । आहाहा ! समझ में आया ? है ?

समरांगण में आये हुए, महामद से भरे हुए मदोन्मत्त आस्रव को.. आहाहा ! महामद से भरा हुआ मदमत्त आस्रव है । पुण्य और पाप महाअभिमानी है, कहते हैं । मैंने मेरे पुण्य के परिणाम में धर्म मनवाकर मानधाता को नीचे गिराया है । आहाहा ! मैंने दुर्गति में डाला है । दुर्गति, यह चार गति दुर्गति है । स्वर्ग भी दुर्गति है । आहाहा ! 'परदब्बादो दुग्गई' आता है न ? भगवान आत्मा के झुकाव के अतिरिक्त जितना परद्रव्य की ओर लक्ष्य जाता है, वह सब चैतन्य की गति नहीं है । आहाहा ! भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थकरदेव की प्रतिमा या तीर्थकर का स्मरण या प्रतिमा के दर्शन, वह सब शुभभाव है; वह कोई धर्म नहीं है । आहाहा !

इसलिए आस्रव कहता है, मैंने तो उसे धर्म मनवाकर कितनों को नीचे गिराया है । मेरे पंजे में से किसी को निकलने नहीं दिया । आहाहा ! जहाँ हो वहाँ ये दया, दान, व्रत, तप को धर्म मनवाकर, साधु नाम धराकर भी भ्रष्ट हुए मिथ्यादृष्टि, आस्रव कहता है कि (मैं) मदमस्त हूँ । आहाहा ! मेरा राज चलता है ! जहाँ हो वहाँ पुण्य ठीक है, धर्म का कारण है,

यह शुभभाव करते-करते धर्म होगा, ऐसा (इसके बिना) सीधे होता होगा? ऐसा अज्ञानी मनवाकर... आहाहा! कठिन काम है, बापू! धर्म कोई ऐसी चीज़ है कि अभी सर्वत्र गड़बड़ी बहुत हो गयी। आहाहा!

यह पुण्य और पाप का भाव आया। क्या कहलाता है? संग्राम। संग्राम में जैसे आता है न? वैसे महामद से भरा हुआ मदमस्त। आहाहा! पुण्य के नाम से धर्म मनवाकर मैंने तो महात्मा को मारा है, दुर्गति में डाल दिया है। (ऐसे) आस्रव को अभिमान हो गया है। क्योंकि अभी तक उसकी जीत है। आत्मा उससे भिन्न है, उसकी जीत हुई नहीं। आहाहा! यह तो सूक्ष्म बात है, बापू!

यह तो समयसार है! यह कोई कथावार्ता नहीं। यह भगवान आत्मा की वार्ता, अध्यात्म कथा है। एक-एक लाईन या एक-एक पंक्ति समझना कठिन है, भाई! आहाहा!

भाषा कैसी है, देखा! 'महामदनिर्भर' भरा हुआ ऐसा मन्थर, मदमस्त। आहाहा! अन्त में भगवान की भक्ति करूँगा, (वह) करते-करते कल्याण होगा। भजन करो। परन्तु वह भजन-वजन है, वह गिरने का भजन है। वह सब शुभराग है, वह धर्म नहीं है, तुझे खबर नहीं है। धर्म तो आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु है, उसका अवलम्बन लेकर धर्म होता है। बाहर का अवलम्बन लेकर तो राग ही होगा, भाई! स्त्री, परिवार का अवलम्बन ले तो अशुभराग होगा; देव-गुरु-शास्त्र का अवलम्बन ले तो शुभराग होगा, परन्तु दोनों राग हैं। आहाहा!

उस महामद से भरे हुए मदमस्त आस्रव को अब 'अयम् दुर्जयबोधधनुर्धरः' आहाहा! यह दुर्जय ज्ञान-धनुर्धर.. (अर्थात्) अन्दर पुण्य-पाप से भिन्न स्वरूप का जो ज्ञान प्रगट हुआ, वह दुर्जय ज्ञान-धनुर्धर.. यह धनुर्धर (अर्थात्) एक के बाद एक ज्ञान की बाणावली अन्दर से जागी। राग को तोड़ डाला। आहाहा! दुर्जय ज्ञान (अर्थात्) जिस ज्ञान को जीतना (असम्भव है), जगत में कोई जीत नहीं सकता, ऐसा दुर्जय आत्मा का ज्ञान कैसा है?

धनुर्धर.. बाणावली है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, तप के विकल्प से भिन्न पड़कर आत्मा का ज्ञान हुआ, उस ज्ञान को जीतने के लिए अब कोई समर्थ नहीं है। वह

ज्ञान धनुर्धर एक के बाद एक बाण छोड़ता है (चलाता है)। पुण्य और पाप का नाश करता है और आत्मा की शान्ति की जागृति करता है। आहाहा! एक घण्टे में ऐसी बातें! चलते (प्रवाह) में तो यह करो, यह करो, भक्ति करो, व्रत करो, तप करो, मन्दिर बनाओ, पूजा करो। धूल तेरे लाखों करोड़ों खर्च कर न! वह पर की क्रिया कर सकता हूँ, यह मान्यता ही मिथ्याभ्रम है। उसमें तेरा भाव होवे तो शुभभाव - पुण्य है। वह बन्ध का कारण है। आहाहा!

उसे यह दुर्जय ज्ञान-धनुर्धर जीत लेता है,.. यह जो आस्रव मदमस्त था, उसे यह दुर्जय ज्ञान—सम्यग्ज्ञान—राग से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान उसे जीतता है। आहाहा! 'उदारगभीरमहोदयः' कैसा है? कि जिसका (-ज्ञानरूपी बाणावली का) महान् उदय उदार है.. आहाहा! राग के विकल्प से, दया, दान, व्रत, तप के विकल्प से (ज्ञान) भिन्न पड़ा, प्रभु! उसका जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान उदार है। महान् उदय उदार है.. है? 'उदारगभीरमहोदयः' जिसका (-ज्ञानरूपी बाणावली का) महान् उदय उदार है आहाहा! (अर्थात् आस्रव को जीतने के लिये जितना पुरुषार्थ चाहिए उतना वह पूरा करता है)... आहाहा! ऐसा कठिन काम है। एक-एक श्लोक समझना कठिन, बापू! ऐसे पढ़ जाए, वाँच जाए, वाँच गए (ऐसा नहीं चलता)। आहाहा!

वह ज्ञान कैसा है? उदार है। अर्थात्? विकार का नाश करने के लिए जितना पुरुषार्थ चाहिए, वह ज्ञान पूरा करता है। आहाहा! उदार है। ज्ञान अन्दर से उदार होकर प्रगट हुआ है। जितना चाहिए, उतना (अर्थात्) राग को नाश करने के लिए (जितना) ज्ञान चाहिए, उतना प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन होने पर उसके साथ सम्यग्ज्ञान होने पर उस ज्ञान की धारा ऐसी है कि राग को नाश करने का जितना पुरुषार्थ चाहिए, उतना तैयार होकर ही जागता है। आहाहा! उदार है।

और गम्भीर है, (अर्थात् छद्मस्थ जीव जिसका पार नहीं पा सकते)। आहाहा! 'महोदयः' महा उदय। 'महोदयः' का पहला अर्थ धनुर्धर का महान् उदय किया। ज्ञानरूपी धनुर्धर का महान् उदय, और उदार है। गम्भीर है। जिसका पार पाना.. आहाहा! अलंघ्य है। अन्दर मध्य पाना कि इस ज्ञान का क्या अर्थ है? अपार.. अपार..! प्रभु का

ज्ञानस्वभाव अपार.. अपार.. है। ऐसा वह गम्भीर है। जिसका पार अल्पज्ञानी नहीं पा सकता। आहाहा!

एक ओर कहा कि मति और श्रुतज्ञान, केवलज्ञान का अंश है। यह उनकी महिमा बताते हैं। अपार ज्ञान है। चैतन्य के ज्ञानस्वरूप है, जिसके ज्ञान की महिमा का पार नहीं होता। अपार.. अपार.. अपार.. अपार.. अपार.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ऐसा ज्ञान गम्भीर है। आहाहा! उसने राग-द्वेष को जीता और अपना सामर्थ्य प्रगट करके जन्म-मरणरहित हुआ, उसकी यह बात है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)